International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

देशदीपक त्रिपाठी कृत 'दहशतगर्द' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी

सरोज देवी शर्मा, शोधार्थी

पीएच.डी. विषयः हिंदी

डॉ. शिव चरण शर्मा, शोध निर्देशक

श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ राजस्थान।

शोध सार

सामाजिक विस्थापन के कारणों की व्याख्या विभिन्न लेखको ने विभिन्न रीतियों से की है। तथापि साधारणतया सामाजिक परिवर्तन के पांच प्रधान कारण माने जाते है। अर्थात् जैव, मनोवैज्ञानिक, प्रावधिक और सांस्कृतिक। 1.जैव कारकों में वंशानुक्रम सम्बन्धी और जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तन सम्मिलित किए जा सकते है। 2.भौतिक कारको में प्राकृतिक आपदाएं जैसे भूचाल, बाढ़, तूफान आदि आते हैं। 3. मनोवैज्ञानिक कारकों में अनुकरण तथा अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं जैसे संचार, संघर्ष आदि परिवर्तन आते है।4. सांस्कृतिक कारक मनुष्य की अभिवृतियो, विश्वासो, विचारों इत्यादि में परिवर्तन करते है। इन सभी कारणों में तकनीकी कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण है, क्योंकि भौतिक संस्कृति में इनके द्वारा बड़ी शीघ्रता से परिवर्तन ला देते है। परन्तु भौतिक संस्कृति में लाये गये परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों में जितना तेज परिवर्तन करते है, उतना अभौतिक संस्कृति में आने वाले परिवर्तन नहीं करते। इसके बहुत से कारण है।

दूसरी ओर विश्वास की उपयोगिता दूसरे विश्वास की उपयोगिता की अपेक्षा कम है अथवा अधिक है। यह निर्धारित करना बहुत कठिन काम है। इसको जानने के लिए किसी प्रकार की जांच या कोई परीक्षण भी नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए दो विश्वास है– एक तो यह है कि धीरे–2 उन्नति करके यह समाज बना और दूसरे यह कि इसको ईश्वर ने बना दिया। अब इन दो विश्वासों में कौन सा अधिक सुप्त या आनन्द देता है। इसी प्रकार सरकारी नेता में या धार्मिक विचारों में अथवा महिलाओं की सापेक्ष स्थितियों में परिवर्तन के लाभों को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।

मूल शब्द– विस्थापन की त्रासदी

जब कोई व्यक्ति,वर्ग या समाज एक स्थान से दूसरे स्थान पर वास करने के लिए विवश होता है ,तो उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है–इसे विस्थापन कहते हैं। इस अवस्था में जो समाज उन्नति करना चाहता हो उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहे। ''व्यवहार के जिन नमूनों अथवा परिस्थितियों को किसी समाज के बहुत से सदस्य आपत्तिजनक अथवा अवांछनीय मानते हो वे ही सामाजिक समस्याएं है। इन सदस्यों की मान्यता है कि इन समस्याओं से निपटने के लिए तथा इनके कार्यक्षेत्र को कम करने के लिए सुधार–नीतियाँ, कार्यक्रम तथा सेवाएं आवश्यक होती हैं। [1] इस परिभाषा के अनुसार समूह जिन प्रतिकूल परिस्थितियों को निन्दनीय अथवा अवांछनीय न कहे वे सामाजिक समस्याएं नहीं समझी जाती। उदाहरण के लिए, यदि समुदाय जुआं खेलना बुरा या आपत्तिजनक माने तो यह सामाजिक समस्या नहीं समझा जाता। फिर भूमि–कटाव, जल–प्लावन, आँधिया, अग्निकाँड आदि प्राकृतिक और हृदय रोग, कैंसर रोग तथा दूसरे शारीरिक रोग आदि जीव विज्ञान संबंधी कुछ समस्याएं भी है – जिनको सामाजिक

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

समस्याओं की अपेक्षा हम अधिक सरलता से सुलझा लेंगे, परंतु जब हम इनको बदलना अथवा नियंत्रण में लाना एक बहुत ही प्रबल तथा हठी समस्या है। इस पर गहन विचार किया गया है और इसके संबंध मे बहुत–सा साहित्य लिखा जा चुका है। तथापि आज से 60 वर्ष पूर्व की अपेक्षा आज बाल अपराध के अनुपात बहुत ऊँचे है। [2]

इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के अन्दर ईश्वर या ऐसी ही देवी शक्ति में पावन विश्वास गुँथे होते है और उनमे संशय प्रकट करने से यह खतरा पेदा हो जाता है कि स्वयं व्यक्तित्व का विघटन न हो जाए। इसी प्रकार पुराने विश्वासों के स्थान पर जब कभी नये विश्वासों की बात होती है तब समाज उन्हें सदेह की दृष्टि से देखता है। इस प्रकार भौतिक संस्कृति तथा अभौतिक संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों की गति में जो अन्तर है, विषमता है, उसको 'सांस्कृतिक विलम्बना' कहते है। इसकी विस्तृत व्याख्या हम आगे चलकर करेंगे। आइये, अब हम इन तथा कुछ अन्य लेखकों की सम्मतियों का संक्षिप्त विवेचन करें। इन सभी कारणों की व्याख्या निम्नलिखित शीर्षकों के अर्न्तगत की जा सकती है।

अनुकरण, प्रतियोगिता, समायोजन तथा स्वांगीकरण जैसी सामाजिक प्रक्रियाओं को मनोवैज्ञानिक कारणों में रखा जा सकता है। पार्क एवं बर्जेस के अनुसार पांच प्रमुख प्रक्रियाएं होती है। अर्थात् संचार, संघर्ष प्रतिस्पर्धा, समायोजन और स्वांगीकरण जो समाज के गत्यात्मक संगठन का निमार्ण करती है। 3 सांस्कृतिक क्षेत्र में पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी पर पुराने सामाजिक व्यवहार और मान्यताएं थोपी जाती है। पुरानी और युवा पीढ़ी के बीच सांस्कृतिक संघर्ष होता है जिसके कारण युवावस्था के अपराध, यौन सम्बन्धी अपराध और कभी–2 पारिवारिक विस्थापन भी प्रारंभ हो जाता है। किसी एक देश में यदि दो समूहों में सांस्कृतिक संघर्ष हो, तो हो सकता है गृहयुद्ध या साम्प्रदायिक दंगे प्रारंभ हो जाये यदि ऐसा ही संघर्ष दो राष्ट्रों में हो तो उनमे भी शीतयुद्ध की सम्भावनाएं बढ़ जाती है और फिर विश्वयुद्ध के भयंकर परिणाम सामने आते है।

देशदीपक त्रिपाठी 'दहशतगर्द' उपन्यास में 'विस्थापन की पीड़ा' का व्यंग्य की हल्की तर्ज से उभरता है। विस्थापित वर्ग से जुड़े पात्रों के पास मात्र टींसती हुई जीजिविषा है,जिसे वे ढ़ोये जाने को विवश हैं। अन्दरुनी तौर पर विस्थापन के उतरदायी लोग वैसे ही दकियानूस हैं, स्वतंत्राताओं के हिमायती होने का ढोंग और सफल अभिनय करते हैं। यानी वे महसूस तो करते हैं कि स्वतंत्र होकर, मुक्त व्यवहारों में जीना एक उपलब्धि है, लेकिन उनके निर्दयी संस्कारों ने उन्हें इतनी गहराई से, जड़ों से बांध रखा है कि जीवन में जहां कहीं भी विस्थापित होकर उस स्वतंत्रता के खतरों को झेलने, उठाने की बात आती है। वे अपने रुढ़ियों में दुबक जाते हैं और उनके टूटने के डर से क्रोधित होते हैं, नैतिकता की दुहाई देने लगते हैं। देशदीपक त्रिपाठी कृत 'दहशतगर्द' उपन्यास का पात्र वर्ग भारतीय मानसिकता की ऐसी सीमाओं के खिलाफ खुले हुए रूप में सब कुछ कह देता है। उपन्यासकार बहुत ही तीखे ढंग से विस्थापन की पीड़ा को एक छिपे हुए व्यंग्य की नोक से कुरेद देता है। स्वतंत्रता को दिखावटी तौर पर जीते रहने का दम्भ भरना और बात है और विस्थापन के खतरों का सामना करना दूसरी बात है। जीने की शर्त पर अपनी उन भीतरी सीमाओं को तोड़कर उस स्वतंत्रता को उपलब्ध करना निश्चित रूप से एक उपलब्धि है, लेकिन इसके लिए खोलों वाली, मुखौटोंवाली भयानक जिन्दगी नहीं। भीतर–बाहर दोनों स्तरों पर स्वतंत्र होने को सिद्ध करना ही जिंदगी को ईमानदारी से जीना है। निरीह लोगों को घसीट–घसीटकर गोली मार दी गई,सम्पति लूट ली गई। 'सूअर के बच्चे'कहकर 'कत्ले आम' के फतवे विस्थापन के प्रमुख कारण बने । 4 विस्थापित वर्ग एक विद्रोह की त्रासद मनःस्थिति में स्वयं को पाता

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

है। वस्तुतःउनकी मुक्त हंसी और खुले हुए व्यवहार से ' विस्थापित वर्ग ' अप्रत्यक्ष रूप से आक्रान्त होता है—वह अपने घर और दूसरे घर में तुलना करता है और परेशान होता है। अपने घर के परिवेश की सारी कमियां ' विस्थापित वर्ग' के दिमाग में ज्यादा और से उभर आती हैं और स्वयमेव एक लम्बी सांस छूट जाती है। उनके घर में तो मौसम, मच्छर, बच्चों की पैदाइश, रिश्तेदारी की बहुओं, चूल्हा चौका तथा वर्तमान का कचूमर निकाल देने वाले भव्य अतीत के दिव्य पुरूषों का ही भय है। 5 देशदीपक त्रिपाठी कृत 'दहशतगर्द' उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा के वभिन्न कारणों का विश्लेषण किया गया है।

असल में उसके इस तरह सोचने और दुःखी होने और ठंडी सांस भरने के पीछे अपनी स्थितियों के प्रति सुलगता हुआ विद्रोह का भाव भी है, एक ऊब और हिकारत की भावना है – देश के इध्र और उधर के परिवारों में कितना अंतर है, इधर जिंदगी परंपरागत दकियानूस ढर्रों में बंधी है और बंधन का अहसास उधर के परिवार को देख—देख कर और भी कौंच उठता है। अपने घर के हालातों मे लगता है जिंदगी फिजूल हुई जा रही है। विस्थापित वर्ग का किसी काम में मन नहीं लगता है। साफ़ जाहिर है यह कामना, अपनी स्थितियों के प्रति असंतोष उभारती हैं।

विडम्बना यह है कि स्थिति से निकलने का कोई रास्ता नहीं है, इसलिए उधर का घर उसकी और परिवार के सभी लोगों की इर्ष्या का केन्द्र बन जाता है। वे लोग तरह—तरह से अपनी अरूचि उनके प्रति उगलते रहते हैं। उन्हें तमाम बुराईयों का संदर्भ बना लिया गया है— बहुत सी दूसरी चिंताओं के साथ मन में एक नई उद्विग्नता समाने लगती है। यह सारी प्रतिक्रियाएं उस स्तर तक पहुंच न पाने की सीमाओं के कारण उत्पन्न हुई है। खोया हुआ पाने की हसरत है, लेकिन वह पूरी नहीं होती है, इसलिए उसके अभाव में एक बचकाना गुस्सा जन्म लेता है— एक जबरदस्ती का आक्रोश जन्मता है। इस प्रकार इस उपन्यास अपने से ऊँचे स्तर के लोगों की स्वतंत्राताओं से एक मानसिक दबाव महसूस करने की और अपने परिवेश से मुक्ति पाने की तीव्र छटपटाहट की कहानी बन जाती है।

विस्थापित वर्ग महज़ सोचने और ग़म करने को विवश है कि उसेकी आँखों में कभी भी नींद क्यों नहीं भरी मिलती । आँखों में मानो दर्द की एक शिला उसे अंदर ही अंदर भेदती रहती है । आवश्यकता का ज्ञान या आवश्यकता का सही मूल्यांकन ही सही सुख की तलाश की ओर ले जा सकता है। यहां प्रश्न उठ सकता है कि क्या सचमुच उन आवश्यकताओं का कुछ अर्थ है, कोई मानवीय संगति है— जो विस्थापित वर्ग की पीड़ा के लिए आज के साहित्यकार की लड़ाई जारी रखना चाहती है?

निःसंदेह देशदीपक त्रिपाठी के 'दहशतगर्द' उपन्यास में वह तीव्र व्यंग्य है ,जो किसी भी विरोधी स्थिति के दबाव को सहन नहीं कर सकता। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि अधिकांश पात्रों का व्यक्तित्व दूसरों की लड़ाई में विकसित होता है। केवल अपने तई, अपनी ही जड़ताओं को कायम रखने के लिए, स्वयं को व्यवस्थित करने की लड़ाई होती है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह विस्थापन की पीड़ा का संघर्ष उन्हें कहीं नहीं ले जाता साफ शब्दों में वह नाकाफी और भटकाने वाला है। वाहयातों अस्थिर संबंधों को स्थापित करके अपने अवसाद को भूलना चाहता है। चोट खाए हुए आत्मविश्वास की पीड़ा को भुगतते हुए या तो सांस्कृतिक भोंथरा और भावहीन बन जाता है। आम आदमी जिंदा संवेदनशीलता की वजह से गहरी मानसिक यातना के शिकंजे में मुक्त होने की सुखी ख्वाहिश में जीता रहता है। 6 वह तो मात्रा संबंधों की कड़वाहट का जहर अपनी आंखों से पीते हुए एक भयावह और खौफनाक मनःस्थिति में जीता है। देशदीपक त्रिपाठी 'दहशतगर्द' उपन्यास में उपलब्धि की बात यह है कि ये खौफ खड़ा करके मानवीय स्थितियों की कुरूपता पर चोट का अनुभव अवश्य दे देते हैं। यह भी नहीं तो एक बड़ी सी सांकेतिक धरणा करके ही मुक्ति के अनुभव को प्राप्त कर लेना चाहते हैं। लेकिन

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

विस्थापन से यह मुक्ति काल्पनिक और स्वप्नजीवी का सुख ही बनकर नहीं रह जाती है, फलतः अधिकाधिक सुख में विस्तार पाने के लिए एक सुलगती हुई स्वार्थी बेचैनी और भ्रष्ट विकलता विवेच्य अधिकांश पात्रों का चरित्र बन जाती है।

देशदीपक त्रिपाठी एक सचेत साहित्यकार हुए हैं। अतः इनके साहित्य में समाज की विभिन्न विसंगतियों को कथ्य का आधार बनाया गया है। मैक वेबर एण्ड पेज ने समाज की सटीक परीभाषा देते हुए लिखा है – समाज सम्बन्धों का जाल है। यह अपने आप में रीतियों, कार्यविधियों, अधिकार व आपसी सहायता, अनेक समूहों तथा उनके विभाजनों, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है। यह निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। इसके अन्तर्गत मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता या संकुलता निहित है, चाहे वे सम्बन्ध साध्य साधन, स्वाभाविक, प्रतीकात्मक अथवा क्रियाओं से उत्पन्न हो। कोई भी व्यक्ति समाज से अलग नहीं है। घने बीहड़ों में निवास करने वाले साधु–सन्यासी भी समाज के दायरे में ही आते हैं। 7 नाथों, सिद्धों और अन्याय ऐसे वैरागी साधुओं ने समाज से एक निष्चित दूरी रखी, परन्तु वे फिर भी किसी न किसी रूप में समाज से सम्बन्ध रहे और समाज भी उनसे प्रेरणाएं पाता रहा है। देशदीपक त्रिपाठी स्वयं भी समाज का अभिन्न अंग है और उसके अधिकांष विषय भी सामाजिक विस्थापन से जुड़े हैं–

'इसी तरह बीस वर्ष बीते।
मध्यावधि चुनाव होते रे।
अल्पमत की सरकारें आती–जाती रही!
परन्तु, सिन्धुस्तान, खाकिस्तान के विरूद्ध कोई भी प्रभावी कार्यवाही न कर सका!

'हाँ इतना जरूर हुआ था कि सिन्धुस्तानी फौज़ मासूम प्रान्त में तैनात कर दी गई थीं,
और वे दहशत गर्द सिन्धुस्तानी फौजों से अक्सर खूनी मुठभेडे करते रहते थे।
खाकिस्तान के एक तरफ सिन्धुस्तान था–
तो दूसरी तरफ था–
'गान' मुल्क!
वे पूरा मुल्क भी खाकी मज़हब मानने वालों का मुल्क था। वहां की ज्यादातर आबादी–लम्बी, चौड़ी, गोरी–हँसमुख और स्वतंत्रता–प्रेमी थी। परन्तु उनमें से कुछ आबादी जो कट्टरपंथियों की थी, वो कट्टरपंथी आबादी खाकिस्तान की कट्टरपंथी 'खाकी' आबादी से बहुत ज्यादा बर्बर और क्रूर थी।

दस वर्ष बीतते–बीतते खाकिस्तान के मंसूबे इस कदर बढ गए कि 'वे' मासूम प्रान्त में दहशतगर्दी फेलाने के लिए इन कट्टरपंथी, बर्बर एवं क्रूर गानियों की मदद लेने लगे। 8विशेषकर देशदीपक त्रिपाठी कृत 'दहशतगर्द' उपन्यास सामाजिक अनुभूतियों के रंगो से खूब रंगा हुआ है। इसमें सामाजिक जड़ताओं और कुसंस्कारों के विरूद्ध वैज्ञानिक सोच से जुड़कर जीवन की चिंताओं के व्यापक अहसास प्रकट हुए हैं। विस्थापित समाज में रह रहे आदमी के संघर्श, उसके दुःख–दर्द और उसकी सामाजिक स्थिति का सजीव चित्रण मिलता है, परन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि विस्थापन के कारण मानवीय सम्बन्धों में गिरावट, सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन और सामाजिक विषमताओं की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है। 9 कवि कर्म उसके कथ्य पर केंद्रित होता है। वह समाज का तिरस्कार नहीं कर सकता। देशदीपक त्रिपाठी ने'दहशतगर्द' उपन्यास में विस्थापन की विभिन्न स्थितियों को कथ्य का आधार बनाया है–'कोई ढ़ंग का सिन्धू परिवार न मिलने पर वे खाकी देहशतगर्द, अब 'वहाँ' के खाकी मजहब वालों के घरों में ही लूट पाट मचाने लगे, जिससे वहां की सारी आम जनता त्राहि–त्राहि कर

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

उठी। जो 'काम' अब तक सिन्धू आबादी के साथ होता आया था; 'उनके' न मिलने पर अब वही काम वहाँ की खाकी मजहब वाली आबादी के साथ होने लगा। 10

इनकी रचना धर्मिता में युग और समाज के विस्थापन की संवेदना है। समाज में व्याप्त समस्याएँ रचना को व्यापकता प्रदान करती है। युग की परिस्थितियाँ रचनाकार की चेतना को रूपायित भी करती है। कोई भी रचना युग के संदर्भ से अलग रखकर नहीं आंकी जा सकती एवं न ही उसका कोई स्थायी महत्त्व होता है। एक उदाहरण देखिए–

'फिर कस्बे! एक कस्बे से दूसरे कस्बे!
फिर षहर। एक शहर से दूसरे शहर!
फिर पूरा प्रान्त।
फिर पूरा देश!'
'और फिर–पूरा विश्व!'

'यानि अपने पड़ोसियों से मिल–जुलकर रहने के तथ्य का सार विष्व बन्धुत्व सुनता की भावना को प्रेरित करता है, तो ऐसे मज़हब में ये खून–खराबा, मारने–काटने; और मासूम लड़कियों की इज्जत लूटनें वाली बात कहां से आ जाती हैं। देवव्रेत साहब! ये उन खाकिस्तानी सरकार के कुछ चन्द प्रभावशाली धर्मांध गुर्गों की ऐसी बेहद नापाक और घिनौनी साजिश का हिस्सा है, जिसके चलते कभी भी वे सारे निर्दोश खाकिस्तानी आवाम भी भयंकर संकट में पड़ सकते हैं।'

निष्कर्ष

विस्थापित–वर्ग अपने विचारों में उलझा था। कहाँ से प्रारम्भ करे अपनी जिंदगी। सब ओर वैचारिक दरिद्रता है। सभी राजनीतिक दलों की एक विचारधारा होती थी, कैडरों का एक चरित्र होता था। कोई कहता था कि अमुक आदमी विस्थापित है तो उसका मतलब होता था कि वह जातिवाद, धर्मवाद और रूढ़िवाद से अलग होगा। वैज्ञानिक भौतिकवादी होगा। देशदीपक त्रिपाठी ने'दहशतगर्द' उपन्यास में विस्थापन की समस्या को मूल रुप से उठाया है।

व्यक्तिगत भाव ही स्मष्टिगत अवस्था को प्राप्त होते हैं। व्यक्ति समाज को हाशिये पर रखकर समाज, धर्म, संस्कृति इत्यादि दृष्टि से विचार नहीं कर सकता। मूलतः सार्वभौमिक संवेदनाएं व्यक्ति के मन में ही पनपती हैं। तदंतर विकास पाकर समाज, धर्म और संस्कृति इत्यादि से जुड़ जाती है। पंत का यह विचार है कि कोई भी महान कलाकार न तो पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होता है और न ही पूर्णरूपेण आत्मनिष्ठ। विस्थापित के प्रति पीड़ा का बीज कलाकार की निजी संवेदनशीलता में ही होता है, परंतु जब वह बीज कलाकृति रूपी पुश्प का रूप धारण करता है तो वह पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ हो जाता है। साहित्य को जनता की संचित चित्तवृतियों का प्रतिबिम्ब कहा जाता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

संदर्भ सूची

1Richard C. Fuller and Richard Myers, "Some Aspects of a Theory of social Problems" in American Sociology Review (February 1941), P.P. 24-32 and Weinburg S. Kirson, Social problems in our times (1960), P.4

2 Weinburg S. Kirson, Op-Cit (1960), P.4

3 Russel, Bertrand, Principales of Social Reconstruction (1916), p.26

4 देशदीपक त्रिपाठी 'दहशतगर्द' पृ0 22–23

5 लुटे–पिटे,भयंकर आर्तनाद करते वे मजलूम लोग,वे शरणार्थी'– देशदीपक त्रिपाठी 'दहशतगर्द' पृ0 65

6 आर.एम. मैकलेवर एण्ड सी.एच.पेज, सोसायटी पृ0 3

7 देशदीपक त्रिपाठी, 'दहशतगर्द', पृ0 89

8 आलोचना : जनवरी 1968 पृ0 52

9 देशदीपक त्रिपाठी, 'दहशतगर्द', पृ0 89

10 देशदीपक त्रिपाठी, 'दहशतगर्द', पृ0 98